हमारी पाठ्यपुस्तकों का एक अहम पन्ना

कैलाश चन्द्र कांडपाल

प्रस्तुत आलेख कैलाश चन्द्र कांडपाल के एक वक्तव्य और उसपर किए गए सवाल जवाब का अभिलेखीकरण है। आलेख दो हिस्सों में है। पहले हिस्से में कैलाश कांडपाल ने स्कूली शिक्षा के व्यापक उद्देश्य और उसमें पाठ्यपुस्तकों के योगदान पर प्रकाश डाला है। उसमें भी वह संविधान की प्रस्तावना के बहाने देश की कल्पना और नागरिक निर्माण की प्रक्रिया पर बातचीत को केन्द्रित रखते हैं। वक्तव्य का सार यहाँ दिया गया है। आलेख के दूसरे हिस्से में श्रोताओं के सवालों पर वक्ता के सिलसिलेवार जवाब हैं। इस सम्पूर्ण वक्तव्य और उसपर आधारित सवाल जवाब का अभिलेखीकरण मोअज़्ज़म अली ने किया है। सं.

मैं अपने विषय के अन्तर्गत यहाँ कोई नई बात नहीं करूँगा, बल्कि स्कूली शिक्षा और पाठ्यपुस्तकों में संविधान की प्रस्तावना और निहितार्थ पर एक बार फिर से ध्यानाकर्षण का प्रयास करूँगा कि कक्षा में केवल विषयों को पढ़ाने की बजाय शिक्षा के उद्देश्यों के आलोक में वांछित समाज के निर्माण में स्कूल की क्या भूमिका हो सकती है?

भारत के सन्दर्भ में इस पाठ्यचर्या के सामाजिक मूल्यों को समझना है तो इसे हम स्वयं के लिए निर्धारित संवैधानिक मूल्यों के ज़रिए समझ सकते हैं। पाठ्यचर्या में निर्धारित मूल्य संविधान से आते हैं जो कि न्यायपरकता, समता और बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हैं। इसी के चलते हमारी पाठ्यपुस्तकों का एक पन्ना भारत के संविधान की प्रस्तावना के लिए समर्पित है। स्कूली व्यवस्था का एक उद्देश्य है, इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए पाठ्यचर्या है, पाठ्यचर्या में कुछ मूल्य हैं, जिनको बच्चों में लाना है। भारत के सन्दर्भ में वे संवैधानिक मूल्य हैं। पाठ्यचर्या में इन मूल्यों पर हमें हमेशा ध्यान रखना है और इन मूल्यों को बेहतर रूप से समझने के लिए हमें संविधान की प्रस्तावना को देखना समझना होगा।

मुझे व्यक्तिगत रूप से यह लगता है कि इस प्रस्तावना में जीवन दर्शन है। भारत जैसे देश में वांछित समाज बनाने के लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत के संविधान को हम इस तरह से समझने के प्रयास करें जैसे किसी धर्मग्रन्थ को समझने का प्रयास करते हैं। धर्मग्रन्थ की तरह भारत के संविधान में भी हमारी आस्था होनी चाहिए क्योंकि इसी से हम वैसा समाज बना पाएँगे, जैसा हम चाहते हैं। यह प्रस्तावना संविधान की मूल आत्मा है।

तत्पश्चात, व्याख्यान के विषय के अन्तर्गत श्रोताओं ने अपने प्रश्न रखे और वक्ता द्वारा उन प्रश्नों पर अपने विचार व्यक्त किए गए।

प्रश्न : पाठ्यपुस्तकों में संविधान की प्रस्तावना का पन्ना क्यों है? इसको लेकर एक शिक्षक से क्या अपेक्षा है? न्याय, सम्प्रभुता को कक्षा के सन्दर्भ में कैसे समझें?

कैलाश कांडपाल : इस बात को समझना मुश्किल नहीं है। सामाजिक न्याय की बात करें तो कक्षा में जाति, लिंग, धर्म, आर्थिक हैसियत आदि के आधार पर किसी तरह का पक्षपात न हो। बच्चा किसी भी समुदाय या पृष्ठभूमि का हो, सबके साथ समान व्यवहार हो। किसी भी क्षण बच्चे को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि उसके साथ किसी तरह का भेदभाव हो रहा है। शिक्षक का सबके साथ समान व्यवहार होना चाहिए। दूसरी तरफ़, क्योंकि बच्चे एक समाज का हिस्सा हैं, तो वे कुछ बातें समाज या परिवार से लेकर कक्षा में आएँगे तो इस विषय पर बच्चों से लगातार बातचीत हो। हमारी पाठ्यपुस्तकें समाज में किसी भी प्रकार के पक्षपात को तर्क के साथ नकारती हैं। अतः इनसे बहुत मदद मिलेगी।

प्रश्न : देश, काल, परिस्थिति के अनुसार उद्देश्य बदलते हैं, क्या हमारी पाठ्यपुस्तकें वर्तमान उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं?

कैलाश कांडपाल : हाँ, देश, काल, परिस्थिति के अनुसार चीज़ें बदलती हैं। यदि हम सामाजिक मूल्यों के अनुसार न्याय, समता आदि की बात करें, तो वे नहीं बदलेंगे, वे स्थाई हैं। हम यह नहीं कह सकते कि आज हम न्याय कर रहे हैं और कल अन्याय करेंगे, या आज हम स्वतंत्रता दे रहे हैं और कल नहीं देंगे, या आज हम समानता की बात कर रहे हैं और कल नहीं करेंगे। जब बच्चा स्कूल से शिक्षा प्राप्त करेगा तो जीवन यापन के लिए कोई-न-कोई काम या नौकरी तो करेगा ही, परन्तु देश के नागरिक के तौर पर अपनी ज़िम्मेदारी निभाते हुए, वह क्या भूमिका निभाता है, यह समझना अधिक महत्त्वपूर्ण है। देश की प्रगति के लिए एक वांछित समाज बहुत ज़रूरी होता है। बच्चा बड़ा होकर आजीविका अच्छी कर रहा है, परन्तु बेईमान है। डॉक्टर, इंजीनियर बन गया, लेकिन नैतिक मूल्य नहीं हैं, यह सही नहीं है। स्वस्थ भारत के लिए हमने जो संवैधानिक मूल्य तय किए हैं, वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रश्न : देश में बहुत-से शैक्षिक संस्थान या स्कूल हैं, जिनका नाम किसी धर्म या जाति पर रखा जाता है, इसको कैसे समझें?

कैलाश कांडपाल : कुछ धार्मिक संस्थाएँ स्कूल संचालित करती हैं लेकिन उन्हें भी निर्धारित पाठ्यचर्या को लागू करना होता है। हम जिन सरकारी स्कूलों की बात कर रहे हैं, वह राज्य की संस्था हैं, न कि नागरिक की। यह राज्य द्वारा अपनाई गई एक संयोजित संस्था है, जो राज्य ने तय किया है। इसलिए इनमें राज्य का नियम लागू होगा। जब हम संविधान के अनुसार धर्मनिरपेक्षता की बात करते हैं, तो राज्य को धर्मनिरपेक्ष होना पड़ेगा और इस बात से परहेज़ करना होगा कि उसे किसी धर्म विशेष के लिए जाना जाए।

प्रश्न : स्कूल में बच्चे के प्रवेश के दौरान उसकी जाति पूछी जाती है, क्या यह न्यायपूर्ण है?

कैलाश कांडपाल : ऐतिहासिक रूप से हम ऐसे नहीं रहे हैं। आज से 70 साल पहले 1949 में हमारा संविधान बना। संविधान निर्माण से पहले की पृष्ठभूमि देखें, तो हमारे समाज में बहुत-सी समस्याएँ रही हैं। समाज में किसी जाति विशेष या जेंडर की बात करें, तो उनको वह स्थान नहीं मिल पाया था, जो मिलना चाहिए था। अभी की प्रक्रिया में इस तरह की सुविधाओं को 'सकारात्मक पक्षपात' कहा जाता है।

समानता के मूल्य के आधार पर यह उदाहरण ले सकते हैं कि एक दौड़ लगनी है। एक व्यक्ति 50 मीटर आगे से और दूसरा व्यक्ति 50 मीटर पीछे से दौड़ शुरू करता है, तो पीछे वाला कभी वहाँ तक नहीं पहुँच पाएगा। आपको उसको सहारा देना होगा, कुछ सुविधाएँ देनी

होंगी कि वह भी वहाँ पहुँच सके। इसलिए भारत में कुछ जाति विशेष के लिए आरक्षण की व्यवस्था रखी गई है, ताकि उनकी स्थिति में सुधार हो। अगर यह इंग्लैंड या इज़राइल जैसा देश होता तो वहाँ के संविधान में यह मूल्य शायद नहीं आएँगे, क्योंकि उनकी जिस तरह की सामाजिक संरचना है, वहाँ इस तरह के मूल्य की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी। लेकिन भारत में सकारात्मक पक्षपात या आरक्षण की ज़रूरत पड़ेगी। आज के सन्दर्भ में यह ज़रूरी भी है। आदर्श रूप में देखें तो ऐसा नहीं होना चाहिए, परन्तु भारत की स्थिति देखते हुए अभी भी आरक्षण की ज़रूरत दिखाई देती है।

एक व्यक्ति किसी भी जगह या समाज में पैदा होता है तो उसकी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक पूँजी होती है। सामाजिक पूँजी बहुत ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होती है। यह कई चीज़ों में एक व्यक्ति को अतिरिक्त लाभ देती है। जो ऊँची जाति में पैदा हुआ है और उसके पास आर्थिक पूँजी नहीं भी है, फिर भी उसके पास सामाजिक और सांस्कृतिक पूँजी की कमी नहीं है। उसका समाज में एक स्थान बना हुआ है। इस सामाजिक विभेद को कम करने के लिए इस तरह की प्रक्रियाएँ अपनाई गई हैं। अगर सबकुछ ठीक रहा तो ऐसा समय भी आ सकता है कि इसकी ज़रूरत ही न पड़े।

प्रश्न : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता एक विवादित मुद्दा है। क्या हम इसकी कोई सीमा तय कर सकते हैं?

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथ-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय,**

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता,**

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता** प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हज़ार छह विक्रमी) को **एतद्द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

कैलाश कांडपाल : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का मतलब यह नहीं है कि कुछ भी बोलो। हमें पता है कि हमारे कुछ मौलिक अधिकार हैं। अधिकारों में हमेशा एक केवियट (caveat) होती है, अर्थात वहाँ से हमारे अधिकार ख़त्म होते हैं, जहाँ से किसी दूसरे के अधिकारों का हनन होता है। इसलिए अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के भी कुछ नियम हैं। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हम किसको कह रहे हैं? हमको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है, परन्तु यह भी ध्यान देना होगा कि इससे किसी अन्य को किसी तरह की चोट न पहुँचे। कोई अपमानित महसूस न करे। इसलिए इन दायरों को समझने की भी ज़रूरत है। अगर कक्षा में एक बच्चा अपनी बात रख रहा है और वह उस नियम या दायरे के अन्तर्गत अपनी बात रख रहा है, और हम उसकी बात को सम्मान देते हैं, तो वास्तव में हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल्य को सम्मान दे रहे हैं।

प्रश्न : वर्तमान में हम देखते हैं कि समाज संवैधानिक अधिकारों को लेकर बहुत जागरूक दिखता है लेकिन संवैधानिक कर्तव्यों के प्रति ज़्यादा जागरूक नहीं है, इसके क्या कारण हो सकते हैं?

कैलाश कांडपाल : इसका मुख्य कारण शिक्षा है। जब हम पाठ्यपुस्तक की बात करते हैं तो यह एक पाठ्यचर्या के आलोक में लिखी जाती है, जिसके अन्तर्गत कक्षा में कुछ मूल्य हमको स्थापित करने होते हैं। अगर मुझमें वे मूल्य स्थापित हैं, तो एक नागरिक के तौर पर, मैं अपने कर्तव्यों को लेकर भी जागरूक

रहूँगा। इन मूल्यों के अनुरूप अगर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा दी जाएगी तो प्राकृतिक रूप से जितने भी नागरिक होंगे, वे क़ानून को मानने वाले होंगे और अपने कर्तव्यों का पालन करने वाले होंगे। जैसे– कोविड-19 के समय में हमारी ज़िम्मेदारी है कि हम इस बीमारी के वाहक न बनें। हमें स्वयं तो बचना ही है और अन्य लोगों को भी समझाना है कि संक्रमण न फैले। अगर हम यह सोचते हैं कि किसी के संक्रमण से मुझको क्या, तो यह संक्रमण हमारे घर भी पहुँच जाएगा। मैं अपने आसपास कुछ ग़लत देख रहा हूँ और उस ग़लत होने को नहीं रोकता हूँ, तो कल वह मेरे और मेरे बच्चे या मेरे परिवार के साथ भी हो सकता है। इस तरह की जागरूकता शिक्षा देती है।

प्रश्न : हमारे स्कूलों में अलग-अलग वर्ग के बच्चे आते हैं। छोटी उम्र में तो वे सभी घुल-मिल कर खेलते हैं, लेकिन जब उनकी समझ विकसित होना शुरू होती है और वे बड़ी कक्षाओं में जाते हैं, फिर मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते। क्या ऐसा मान लिया जाए कि स्कूली शिक्षा पर सामाजिक शिक्षा ज़्यादा हावी होने लगती है?

कैलाश कांडपाल : हमें एक शिक्षक के तौर पर यह देखना होगा कि स्कूल में सभी सामाजिक-संवैधानिक मूल्य पोषित हो रहे हैं या नहीं? अगर ऐसा नहीं होगा तो औपचारिक शिक्षा की बजाय अनौपचारिक शिक्षा हावी रहेगी। जब मैं कक्षा पाँच में पढ़ता था और जिस परिवेश में रहता था, उसमें जातिवाद बहुत चलता था। मैं ब्राह्मण परिवार से था और एक परिवार अनुसूचित जाति का था। एक अनुसूचित जाति का बच्चा अपने घर पानी ले जा रहा था। मुझे प्यास लगी तो मैंने उससे पीने के लिए पानी माँगा। मेरे साथ जो बच्चे बैठे हुए थे, वे ठिठक गए। आज मैं उस बात को सोचता हूँ या चिन्तन करता हूँ कि वह व्यवहार कहाँ से आ रहा था? मेरा परिवार तो मुझको यह सब सिखा नहीं रहा था। मेरा समाज भी मुझको नहीं सिखा रहा था। तब मैं यह समझ पाता हूँ कि मुझे मेरा स्कूल ऐसा सिखा रहा था। स्कूल की शिक्षा काफी प्रभावशाली थी जो मुझे बता रही थी कि इस तरह का सामाजिक विभेद ग़लत है। किसी के साथ ऐसा नहीं होना चाहिए। मैंने पानी पिया और साथियों से कहा कि इससे कुछ नहीं होता है।

वर्तमान समय में हम देखें तो पाएँगे कि अब इस तरह की चीज़ें काफ़ी हद तक कम हो रही हैं। यह शिक्षा का ही प्रभाव है। अब क्योंकि हमारा इतिहास हज़ारों सालों का इतिहास है और आज़ादी बस 70 साल पहले ही मिली है। 70 साल में दो-तीन हज़ार सालों की चीज़ें ख़त्म नहीं होंगी। इसमें समय लगेगा।

प्रश्न : स्कूलों में जाति और लिंग के अनुसार सुविधाएँ दी जाती हैं जैसे– वजीफ़ा और गणवेश के वितरण के दौरान, क्या यह बच्चों के साथ पक्षपात नहीं है? बच्चों की समानता के आधार पर इसको कैसे स्पष्ट करें?

कैलाश कांडपाल : हाँ, ऐसा होता है। इससे बच्चों को लगता है कि फलाँ बच्चे को इस तरह की सुविधाएँ मिल रही हैं, तो मुझको क्यों नहीं मिल रही हैं। यह एक बहस का मुद्दा है। इसके लिए मैं श्याम बेनेगल द्वारा निर्देशित 'संविधान' की सीरीज़ देखने का सुझाव दूँगा। उसमें संविधान के इस हिस्से पर बहुत गम्भीर बहस है कि अगर हम कुछ विशेष जाति आदि को विशेष सुविधाएँ देंगे तो कुछ लोग अपने साथ भेदभाव को महसूस करेंगे, लेकिन साथ ही इस सीरीज़ में यह तर्क भी आते हैं कि क्या पहले से चला आ रहा भेदभाव ख़त्म हो गया है? नहीं हुआ है। आज भी समाज में लड़की और लड़के के साथ अलग-अलग तरह का व्यवहार किया जाता है। लड़के को निजी स्कूल में और लड़की को राजकीय स्कूल में पढ़ाए जाने के उदाहरण हैं। छोटा भाई है तो लड़की ही घर पर रुककर उसका ध्यान रखती है और लड़का स्कूल जाता है। समाज में इस तरह के पक्षपात हैं तो सकारात्मक पक्षपात से ही इनको कैसे ख़त्म किया जा सकता है। इस तरह के लाभ

देना एक तरह के प्रयास हैं उनकी स्थिति में सुधार करने के लिए। इसके अलावा कोई राह दिखती भी नहीं है।

प्रश्न : क्या भारतीय समाज संवैधानिक मूल्यों को इसलिए आत्मसात नहीं कर पा रहा, क्योंकि हज़ारों सालों की धार्मिक शिक्षा से निकल नहीं पाया है?

कैलाश कांडपाल : मेरा मानना है कि ऐसा है। इन मूल्यों को आत्मसात करने के लिए इसका हल सार्वजनिक शिक्षा से ही निकलेगा। औपचारिक शिक्षा किस तरह से दी जा रही है? क्या शिक्षा इन संवैधानिक मूल्यों को अपने में समाहित कर पाई है? जहाँ तक धर्म के प्रभाव की बात है तो यह एक बड़ी बहस है। संवैधानिक विचार तार्किक आधार पर बात करते हैं।

प्रश्न : हम कई बार इस तरह का पक्षपात बच्चों के बीच लाते हैं, जब कह रहे होते हैं कि ये बच्चे अनुसूचित जाति के हैं और उसी के आधार पर नि:शुल्क गणवेश दिया जाता है। इससे भी पक्षपात पैदा होता दिखता है। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

कैलाश कांडपाल : सकारात्मक पक्षपात के नज़रिए से ऐसा किया जाए तो ठीक है। उसके आधार पर कुछ सुविधाएँ दी जाती हैं तो ठीक है। लोग सोचते हैं कि ऐसा कुछ है नहीं, हमने बस इसका हव्वा बना रखा है। मैं उनसे सवाल करता हूँ कि क्या वर्तमान समय में अन्तर-जातीय विवाह आसानी से हो जाएगा? तो इसका उत्तर है, नहीं होगा। समानता की धारणा कब आएगी? यह तब आएगी, जब हम इस स्तर पर चीज़ों को देखने लगें। उदाहरण के लिए, मैं ब्राह्मण हूँ, चाहे मैं ग़रीब भी होता, तो भी मेरे पास कहीं भी प्रवेश करने का अधिकार होता। मैं किसी मन्दिर में जा सकता था, किसी भी नल से पानी पी सकता था। मेरे पास सामाजिक पूँजी है। अब जब यह पूँजी किसी व्यक्ति के पास नहीं है, उस व्यक्ति को इस स्तर तक लाना है या यह पूँजी उसको देनी है, तो हमें उसको आर्थिक, सामाजिक रूप से सुदृढ़ करना होगा ताकि वह व्यक्ति सामाजिक पूँजी पा जाए। समाज में इस तरह की बहस भी उभरती हैं कि इस तरह के लोग जो अब आर्थिक रूप से बेहतर स्थिति में हैं, फिर भी वे इसका लाभ लेते हैं, तो यह सही बात नहीं है। इस तरह की चीज़ें रहेंगी, लेकिन हमें सोचना होगा कि क्या यह पूरी तरह से समाप्त हो गया है? मुझे लगता है कि अभी इस प्रक्रिया को कुछ समय तक जारी रखना होगा, जब तक यह विभेद पूरी तरह से ख़त्म न हो जाए।

प्रश्न : क्या भारत के अलावा किसी और विकासशील देश में भी इस तरह के आरक्षण की व्यवस्था है? क्या विकसित देशों में भी इस तरह की प्रक्रिया रही है?

कैलाश कांडपाल : इस बारे में मैंने अध्ययन नहीं किया है। महिलाओं के अधिकारों को लेकर सकारात्मक पक्षपात कई देशों में रहा है। हमारा सन्दर्भ अलग है और अमरीका, इंग्लैंड या अन्य देशों का सन्दर्भ अलग है। हम अपने सन्दर्भों में चीज़ों को समझने की कोशिश करें। हमारे सन्दर्भ में हमारा एक इतिहास है और हमारे इतिहास में हमको यह दिखता है कि असमानताएँ हैं जिनके बारे में संविधान सभा में बहस हुईं, चाहे वे जाति, वर्ग, जेंडर या धर्म की असमानताएँ हों, वे अभी भी हैं।

प्रश्न : आज के समय में देशभक्ति की भावना कम देखने को मिलती है। इस समस्या को कैसे दूर किया जा सकता है?

कैलाश कांडपाल : देशभक्ति को कैसे देखा जाए? यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इसके मायने क्या हैं? अगर मैं एक ज़िम्मेदार नागरिक के तौर पर देश की प्रगति के लिए अपना काम करता हूँ, तो मेरी समझ में वह देशभक्ति है। देशभक्ति के मायने केवल देश के दुश्मन को या गद्दारों को मारने से नहीं हैं। ज़िम्मेदार नागरिक के तौर पर देश के विकास और हित में मेरा योगदान भी देशभक्ति है। देशभक्ति एक बड़ा फ़लक है। देशभक्ति बहुत छोटी-छोटी चीज़ें

नहीं है कि कोई देश के ख़िलाफ़ बोलेगा, तो मैं भी उसके ख़िलाफ़ बोलूँगा, जैसा आजकल सोशल मीडिया में देखा जाता है। मैं अपनी कक्षा में पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्या का संचालन सही तरह से करता हूँ तो वह भी देशभक्ति है। मैं सोशल मीडिया के द्वारा देश को तोड़ने की बात नहीं करता हूँ तो वह भी देशभक्ति है। पाठ्यपुस्तक में देशभक्ति पर कोई पाठ रखनेभर से देशभक्ति नहीं होगी। हमारी पाठ्यपुस्तकें भी सामान्य तौर पर देशभक्ति की बात करती हैं। मेरे हिसाब से, एक ऐसा देश जहाँ सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक न्याय हो, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता हो और हैसियत एवं अवसर की समानता हो, भाईचारा एवं सम्मान हो, एकता व अखण्डता हो, वही देशभक्ति है।

प्रश्न : राजनीति किस प्रकार संविधान की प्रस्तावना के ख़िलाफ़ पाठ्यचर्या को प्रभावित कर रही है?

कैलाश कांडपाल : इस तरह की चीज़ें चलती रहती हैं। राजनीतिक पार्टियों की अपनी-अपनी विचारधाराएँ होती हैं। कई बार किसी पार्टी को लगता है कि प्रस्तावना में कोई गड़बड़ है। कोई समझता है कि धर्मनिरपेक्ष शब्द में ही समस्या है, यही फ़साद की जड़ है। कई बार किसी को लगता है कि कोई धारणा या मूल्य गड़बड़ है। पाठ्यचर्या तो कोई नहीं बदल सकता, परन्तु पाठ्यपुस्तकों में कई बार छेड़छाड़ होती है। लेकिन लोग जागरूक हैं। वे समझते हैं। शिक्षाविद् समझते हैं। जब भी छेड़छाड़ का ऐसा कोई प्रयास होता है, तो उसपर बहस होती है। बहुत आसान नहीं होता पाठ्यचर्या में छेड़छाड़ करना।

प्रश्न : एक तरफ़ हम समतामूलक और न्यायमूलक समाज की बात करते हैं, लेकिन दूसरी तरफ़ प्रतियोगिताओं का चलन भी बढ़ रहा है। इसको हम कैसे देखें? सामाजिक पूँजी के मायने क्या हैं?

कैलाश कांडपाल : सामाजिक पूँजी के बारे में मैंने उदाहरण दिया था कि मैं कैलाश कांडपाल हूँ, जो कि एक ब्राह्मण है। यदि मैं निर्धन परिवार में भी जन्म लेता हूँ तो भी समाज में मेरा एक स्थान है। यह मेरी सामाजिक पूँजी है। मैं बहुत आराम से किसी मन्दिर में जा सकता हूँ, मेरे हाथ से कोई भी पानी पी लेगा। यह सामाजिक पूँजी है।

ऐसा नहीं है कि प्रतियोगिता नहीं होनी चाहिए। हम खेल या ओलंपिक्स ख़त्म कर दें क्या? ये चीज़ें अपनी जगह बनी रहेंगी। लेकिन उसमें भावना क्या लाई जा रही है, यह समझना महत्त्वपूर्ण है। हक़ीक़त में खेल आदि जो प्रतियोगिताएँ हैं, वे इंसान को और बेहतर बनाती हैं। हार और जीत को किस तरह से लेना है, इसमें एक जीवन दर्शन मिलता है, सीखने के लिए। प्रतियोगिताओं का अपना एक मूल्य रहेगा। मुझे नहीं लगता कि इससे असमानता आती है। इससे बच्चे को जीवन दर्शन मिलेगा कि मैं हार भी सकता हूँ और जीतने के लिए बार-बार प्रयास करना पड़ेगा।

प्रश्न : आमतौर पर विषय और मूल्यों की शिक्षा को अलग-अलग करके देखा जाता है। फ़ोकस मुख्य रूप से विषयों पर होता है और मूल्य पीछे छूट जाते हैं। इससे हम शिक्षा के उद्देश्यों से भटकते हुए दिखते हैं, इसको लेकर आपका क्या विचार है?

कैलाश कांडपाल : आपकी बात से सहमति है। मैंने अपने वक्तव्य में कहा था कि अगर हम शिक्षा में मूल्य नहीं दे पा रहे हैं तो हम वास्तविक शिक्षा से भटक रहे हैं। जैसा कि मैंने पहले बताया, पाठ्यपुस्तकें भी आपकी सहयोगी हैं, लेकिन समस्या यह है कि हम लोग पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण नहीं कर रहे हैं। शिक्षक जिस भी कक्षा को पढ़ाते हैं, उनको अपनी पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करना चाहिए कि पाठ्यपुस्तकें क्या सोचकर लिखी गई हैं। समस्या यह है कि अगर हमें यह पता नहीं है कि कोई पाठ किस उद्देश्य से लिखा गया है तो दिक़्क़त हो जाती है। मेरी तो इसमें यही समझ है कि विषय और मूल्यों की शिक्षा अलग-अलग नहीं है। अगर हमको यह स्पष्ट है कि पाठ किस उद्देश्य से लिखा गया है, इसमें शब्दों का चुनाव किस तरह का है, इन शब्दों के मायने क्या हैं, तो उसका अन्तरण आसान होगा। फिर हम उसी तरह से शिक्षण कर रहे होंगे जो अपेक्षित है।

प्रश्न : बच्चा स्कूल में जो सीखता है और समाज में जो देखता या अनुभव करता है, उसमें अन्तर दिखाई देता है। इस बारे में आपके क्या विचार हैं?

कैलाश कांडपाल : यह द्वन्द्व तो रहेगा क्योंकि जो बात स्कूल में कही जा रही है, वह समाज में तो है ही नहीं। स्कूल में जेंडर की समानता की बात होती है और घर में पितृसत्ता है। यह एक दिन में बदलने वाली चीज़ नहीं है कि आज हमने बच्चे को जेंडर समानता के बारे में बता दिया और वैसा ही तुरन्त उसके घर में होने लगेगा। एकदम से ऐसा नहीं होगा। इस तरह के बदलाव होने में समय लगता है। मानसिकता इतनी आसानी से बदलती नहीं है। 'निर्भया' जैसी घटना देखकर विश्वास नहीं होता कि कोई ऐसा कैसे कर सकता है? समाज में विसंगतियाँ हैं और लगातार यह द्वन्द्व चलेगा और शिक्षा उससे लड़ती रहेगी।

प्रश्न : छोटी कक्षा में जो पाठ्यपुस्तकें हैं, उसमें संविधान की प्रस्तावना को छापने का क्या महत्त्व है? वह बच्चों की समझ में आने वाली चीज़ नहीं है।

कैलाश कांडपाल : वह प्रस्तावना शिक्षक के लिए है। बच्चे के लिए यह सभी गूढ़ अवधारणाएँ हैं। शिक्षक जब भी कक्षा में पाठ्यपुस्तक का अन्तरण करे, उसको इस प्रस्तावना की कसौटी में कसे और कक्षा के बाद विचार करे कि आज मैं इन मूल्यों को लेकर अपनी कक्षा में क्या काम कर पाई या कर पाया। शिक्षक को अपनी कक्षाओं को इस प्रस्तावना के आधार पर ही परखना है।

प्रश्न : बच्चों में शिक्षकों के प्रति कोई सम्मान नहीं बचा है। इसके कारण क्या हो सकते हैं?

कैलाश कांडपाल : इसको समझने के लिए पहले हमें सम्मान को परिभाषित करना पड़ेगा। एक शिक्षक के पैर छूना, उसको देखते ही डर जाना या छिप जाना, अगर इसको हम सम्मान समझ रहे हैं तो इसको अभी और समझना होगा। जब मैं छोटा था और मेरे शिक्षक कहीं से गुज़रते थे, मेरी कोशिश रहती थी कि मैं उनके सामने न पड़ूँ। अगर मेरे पिताजी से बात करते हुए दिखते थे, मैं सोचता था कि पता नहीं क्या बात कर रहे होंगे? वह सम्मान था या एक डर था? यह मुझको समझना होगा। मेरी समझ में सम्मान यह है कि बच्चा शिक्षक को एक क्रूर व्यक्ति के बजाय एक रोल मॉडल की तरह देखे, तब शायद सम्मान दिखेगा। जब मैं शिक्षक से डरकर छिपता था तो उनको अपना रोल मॉडल नहीं देखता था। मैं उनको एक क्रूर व्यक्ति के तौर पर देखता था, या यह देखता था कि वह मेरी ज़िन्दगी में केवल हस्तक्षेप ही करते हैं और कुछ नहीं। हम सम्मान को इस तरह से देख रहे हैं कि बच्चा शिक्षक में अपने रोल मॉडल को देख रहा है, तब शायद ऐसा समाज दिखेगा। हम जिस पीढ़ी से आए हैं, और जिस समय में आज के बच्चे रह रहे हैं, इसमें बहुत अन्तर आ गया है। ऐसा हमेशा ही रहता है। मैं कहीं एक कथन पढ़ रहा था कि 'आज के बच्चे अपने मन की करते हैं। अपने माता-पिता

की आज्ञा नहीं मानते।' उसके नीचे लिखा था कि यह किसका कथन है? पता चला यह कथन अरस्तु का था। पीढ़ी का अन्तर तो रहेगा, परन्तु आज के समय में यह अन्तर एकदम से बढ़ा है। सूचना प्रौद्योगिकी का जो बूम हुआ है, जिस तरह से आज बच्चे के हाथ में पूरी जानकारी है, ऐसे में यह एकदम से बढ़ेगा। हमको लगेगा कि बच्चे सम्मान करना भूल गए हैं। दरअसल वो पीढ़ी का अन्तर है और हमें उस अन्तर को भी समझना होगा। मैं दो बातें कह रहा हूँ, एक तो सम्मान को परिभाषित करना होगा कि किसको हम सम्मान कह रहे हैं। मेरे अनुसार, रोल मॉडल बनना सम्मान होगा। दूसरा, जो पीढ़ियों का अन्तर बढ़ा है, यह इस पीढ़ी के सामने ज़्यादा है। अगर हम उस चैलेंज को समझते हुए काम करें तो यह समस्याएँ कम होंगी। हर पीढ़ी को लगता है कि उनकी जनरेशन बेहतर थी और आगे आने वाली जनरेशन गड़बड़ है। ऐसा ही शायद आने वाली पीढ़ी को भी अपनी आगे की पीढ़ी के बारे में लगेगा।

प्रश्न : समता-समानता की जो बात हुई है, इसको शिक्षक कक्षा में कैसे लाएँ? पठन-पाठन के साथ लोकतांत्रिक और नैतिक मूल्यों का विकास कैसे करें? इसके लिए क्या करना होगा?

कैलाश कांडपाल : हमें देखना होगा कि हम बच्चों से बातचीत कितनी करते हैं। भाषा शिक्षण में बातचीत का बहुत महत्त्वपूर्ण रोल है। हम कितना बच्चों को समझते हैं? बच्चे हमको कितना समझते हैं? बच्चों का दुनिया को देखने का नज़रिया क्या है? अलग-अलग तरह का बचपन होता है। हमें बच्चे के बचपन को समझना होगा, उसके सन्दर्भ को समझना होगा। इसको समझने के लिए बच्चों से बहुत बातचीत करनी होगी। दूसरा, मुझे लगता है कि कक्षा में जिस लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बात की जाती है, वह बहुत मदद करती है। मैंने कुछ स्कूल देखे हैं जो बहुत लोकतांत्रिक होते हैं। वहाँ पर बच्चे स्वयं बैठकर तय करते हैं कि आज क्या पढ़ेंगे। फिर शिक्षक उसको पढ़ाते हैं और बातचीत करते हैं। इसमें बहुत ज़्यादा स्वच्छन्दता भी नहीं होती है, बल्कि अपना एक अनुशासन होता है। कक्षा प्रक्रिया ऐसी हो कि बच्चे कुछ निर्णय ले सकें। अगर कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे की शिकायत लेकर आ रहा है तो मैं एक शिक्षक के तौर पर अपनी सत्ता या ताक़त का उपयोग करते हुए कोई प्रतिक्रिया न करूँ। अकसर ऐसा देखने में आता है कि कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे की शिकायत लेकर आया और शिक्षक ने जाकर उस बच्चे को तमाचा मार दिया। इससे हुआ यह कि न्याय अस्वीकृत हो गया। इससे न्याय की धारणा ही ख़त्म हो गई। कक्षा में जब कोई बच्चा किसी की शिकायत लेकर आ रहा हो, तो क्या हम उसपर कक्षा में बच्चों के साथ बातचीत कर सकते हैं कि बच्चे ने ठीक किया या ग़लत? क्या किया? इससे बच्चे को तर्क करने, सोचने में मदद मिलेगी और यह प्रक्रिया शिक्षण में भी मदद करेगी।

जब हम किसी बच्चे को शारीरिक दण्ड देते हैं, इससे बच्चे को शायद 12 दूनी 24 तो याद हो जाएगा, लेकिन हम उसको दो चीज़ें और पकड़ा देते हैं। एक, अगर हम सत्ता में हैं तो किसी का शोषण कर सकते हैं। दूसरा, बच्चा यह समझेगा कि हिंसा काम करती है और वह भी हिंसा करेगा। अगर कोई भी शिक्षक संवैधानिक मूल्यों की समझ रखता है, तो वह कभी भी शारीरिक दण्ड का इस्तेमाल नहीं करेगा। वह नहीं चाहेगा कि उसका बच्चा हिंसात्मक या शोषित हो। अगर वह ख़ुद शोषित होगा, तो किसी और का भी शोषण करेगा। हम समाज के किसी दूसरे के बच्चे के साथ हिंसा करेंगे तो वह हिंसा हमारे बच्चे तक भी पहुँचेगी।

प्रश्न : शिक्षक की भूमिका केवल कक्षा में ही नहीं है, समाज में भी है। समाज में शिक्षक के बारे में जो मानसिकता चल रही है, शिक्षक स्वयं उसको कैसे बदले?

कैलाश कांडपाल : शिक्षक की अपनी सीमितता है। समाज के तौर पर अगर हम अपनी कक्षा में केवल बच्चों की बात कर रहे हैं, तो ठीक है, लेकिन एक शिक्षक सामाजिक तौर

पर क्रान्तिकारी बदलाव ला पाए ऐसा सम्भव तो है पर बहुत मुश्किल है, क्योंकि शिक्षक एक सिस्टम का हिस्सा है। वह अपनी कक्षा में बच्चों के साथ इस दिशा में काम कर सकता है। इसलिए कक्षा में बच्चों और उनके अभिभावकों के साथ ही काम करे तो समय के साथ चीज़ें बदलेंगी। अपने स्तर पर कोशिश ज़रूर करनी चाहिए, लेकिन यह बहुत बड़ा काम है। अगर शिक्षक अपने बच्चों के साथ ही न्याय कर ले या उनके अभिभावकों के साथ ही काम कर ले, तो यह भी बहुत बड़ा काम होगा।

प्रश्न : संवैधानिक मूल्यों के पोषण में शिक्षा में काम कर रही ग़ैर-सरकारी संस्थाओं की क्या भूमिका देख रहे हैं?

कैलाश कांडपाल : कोई भी ग़ैर-सरकारी संस्था जो शिक्षा में काम कर रही है, वह पाठ्यचर्या के आदर्शों को समझे, संवैधानिक मूल्यों को समझे और उसी को आधार बनाते हुए काम करे, तो वह सही तरह की ग़ैर-सरकारी संस्था है। स्कूली शिक्षा का उद्देश्य है, एक वांछित समाज का निर्माण करना। ऐसा समाज जो संवैधानिक मूल्यों में आस्था रखता हो।

प्रश्न : हमारे समाज में आर्थिक हैसियत के अनुसार अलग-अलग स्कूल बने हैं। शिक्षा में हम जिस समानता की बात कर रहे हैं, इससे वह थोड़ा ख़त्म-सी होती दिखती है। इस बारे में आपका क्या सोचना है?

कैलाश कांडपाल : जितने भी अलग-अलग तरह के स्कूल हैं, चाहे वह एक बड़ा निजी स्कूल हो, कम फ़ीस वाला निजी स्कूल हो या कोई सरकारी स्कूल हो, इस बात की स्पष्टता होनी चाहिए कि हम एक ही पाठ्यचर्या से गाइड हो रहे हैं। बच्चा किसी भी स्कूल में पढ़ रहा हो, विचार तो एक-सा ही लेकर आएगा। ग़ैर-सरकारी संस्था के तौर पर अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का कहना है कि सरकारी स्कूल सुदृढ़ हो पाएँगे, तभी देश प्रगति के पथ पर आगे बढ़ेगा। आज जो कोविड-19 का समय चल रहा है, ऐसे में ज़्यादा पैसे वाले स्कूल के बच्चे या उनके अभिभावक स्मार्टफ़ोन वहन कर सकते हैं। इस वजह से वहाँ ऑनलाइन शिक्षा ठीक-ठाक चल रही है। हमारे सरकारी स्कूलों को इस दिशा में संघर्ष या चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। इस तरह की असमानता साफ़तौर पर दिखाई देती है। हमारा सोचना है कि हमारे सरकारी स्कूल सुदृढ़ हों और इनको बेहतर बनाया जाए। विकसित देशों में सरकारी स्कूल सिस्टम बहुत मज़बूत है। कई बार संसाधनों की असमानता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हमें इस विभेद को कम करना है तो हमें सरकारी स्कूलों में ज़्यादा निवेश करना चाहिए और यहाँ के भौतिक संसाधनों को समृद्ध करना चाहिए। जैसा कि सिफ़ारिश की जाती है कि शिक्षा में जीडीपी का 6 फ़ीसदी ख़र्च करना चाहिए।

कैलाश कांडपाल कृषि विज्ञान और शिक्षा में स्नातकोत्तर हैं। पढ़ाई के दौरान ऑल इंडिया प्यूपिल साइंस नेटवर्क और साक्षरता अभियान से जुड़ाव रहा है। वे बारहवीं कक्षा तक संचालित एक प्रतिष्ठित विद्यालय के निदेशक भी रहे हैं। 15 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रहे हैं और वर्तमान में राज्य संस्थान उत्तराखंड के राज्य प्रमुख हैं। आप संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं *प्रवाह* और *उम्मीद जगाते शिक्षक* के सम्पादक हैं।

सम्पर्क : kandpal@azimpremjifoundation.org

मौअज़्ज़म अली 1993 से थिएटर, ड्रामा और कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। आपने नेशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा के थिएटर इन एजुकेशन में कलाकार के रूप में काम किया है। फ़िलहाल 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में स्रोत व्यक्ति के रूप में जुड़े हुए हैं।

सम्पर्क : mozzam.ali@azimpremjifoundation.org